Chapter-7

सप्तम परिच्छेद

" उपसंहार "

सप्तम परिच्छेद

" उ प सं हा र "

गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी का अध्ययन कर चुकने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुजरात के अंचल में पोषित यह भावधारा भारत व्यापी सन्त परम्परा की ही एक अभिन्न कड़ी है, जिसने उत्तर तथा दक्षिण के दो सीमा क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए एकत्व की साधना में ज्ञान का दीप जलाया । उत्तर तथा दक्षिण भारत के संतमत की वे सभी विशेषताएँ जो हमें कबीर और नामदेव आदि में मिलती हैं, गुजरात की ज्ञानमार्गी धारा के अन्तर्गत अखा, धीरा, भोजा, और प्रीतम प्रभृति सन्तों में सहज ही विद्यमान हैं । गुजराती सन्तों ने प्रत्यक्ष अनुभव से सत्यान्वेषण, सद्गुरु-महत्त्व-प्रतिपादन, नामस्मरण तथा बाह्याडंबर की व्यर्थता का उपदेश उस समय पुन: दिया जबकि उत्तर तथा दक्षिण की भक्ति भावना समय के प्रभाव से शनै:-शनै: धूमिल होती जा रही थी । सत्रहवीं शती का उत्तरी भारत जबकि निर्गुण को छोड़ सगुण की ओर अभिमुख हो रहा था और जिसके परिवेश में रीतिकालीन-रंगीनी स्पष्ट दिखायी दे रही थी, उस समय ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति से समन्वित गुजरात की यह मध्ययुगीन त्रिधारा अध्यात्मवादका अमर सन्देश दे रही थी ।

उत्तर भारत के कवि खण्डन-मण्डन में लगे रहे, जबकि गुजरात के ऊर्ध्वगामी कवि आध्यात्मिक उड़ान के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहे । उत्तर की संत साधना प्राय: सामाजिक और वैयक्तिक समस्याओं में उलझी रही जबकि गुजराती सन्तों की साधना सामाजिक चेतना के बीच आध्यात्मिकता का संचार करने में निरत रही । यही कारण है कि गुजराती साहित्य के इतिहास में भक्ति एवं आधुनिककाल के बीच रीति काल जैसी कोई स्पष्ट प्रवृत्ति दिखायी नहीं देती ।

ज्ञान का वह दीपक जिसे कबीर ने जलाया था और जायसी, नानक, रैदास तथा मीराँ के स्नेह से जो एक बार उत्तरापथ में पूर्णतया आलोकित हो उठा था, वही जिस समय रीतिकाल में शनै: शनै: क्षीण होने

लगा उस समय पुन: गुजरात के ज्ञानी सन्तों ने उसे अपने स्नेह से सींचकर प्रज्ज्वलित किया था । इतना ही नहीं भावलोक के इन अलबेले सन्तों ने साधना के उच्च शिखर पर पहुँच कर जहां एक ओर गुजरात की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना को जीवित रखा है, वहां दूसरी ओर इन्हीं ने अपनी हृदयस्पर्शी वाणी द्वारा साहित्य तथा संगीत के प्रति भी अगाध प्रेम का परिचय दिया है ।

संतवाणी का मूल्यांकन करते हुए प्रसंगवश संत साहित्य के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का उल्लेख एवं निराकरण भी आवश्यक प्रतीत होता है । अभी कुछ समय पहले तक विद्वानों का एक वर्ग ऐसा था जो सन्त-साहित्य को साहित्य के अन्तर्गत स्थान देने के लिए तैयार नहीं था । मिश्रबन्धु, बाबू श्याम सुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पीताम्बर दत्त बड्थ्वाल जैसे महानुभावों के अध्ययन एवं अनुशीलन के परिणाम स्वरूप इस भ्रान्त धारणा का एक सीमा तक निराकरण हुआ, किन्तु आज भी विद्वानों का एक वर्ग ऐसा है जो संत-कवियों की रचनाओं को काव्य के अन्तर्गत स्थान न देकर शास्त्र अथवा नीति-ग्रन्थों के अन्तर्गत ही उन्हें रखने का पक्षपाती है । उदाहरणार्थ — आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का यह कथन इस संदर्भ में उधृत किया जा सकता है — "समूची सन्तवाणी न तो साहित्य ही है, न तो काव्य ही । वह पूर्णत: एकांगी ठेठ दार्शनिक पारिभाषिक शब्दों से लदी हुई अस्पष्ट उक्तियों का समूह है । ....., संत कवियों की समस्त रचनाएँ शास्त्र अथवा नीति ग्रन्थों के अन्तर्गत तो आ सकती हैं, काव्य के अन्तर्गत नहीं । .... सन्तों की वाणी में प्रसंगवश उपमा, रूपक, दृष्टान्त आ जाने से अथवा सूक्ति का चमत्कार आ जाने मात्र से ही वह साहित्य की कोटि में नहीं आ सकती । उसके काव्यत्व या साहित्य की स्थापना के लिए मूर्त आलम्बन का होना आवश्यक है । यह आलम्बन तत्त्व सम्पूर्ण सन्त साहित्य में स्वभावत: अनुपस्थित है और इसीलिए उसमें कहीं भी न तो काव्यानन्द ही प्राप्त होता है और न रस की तन्मयता ही आ सकती है ।"[१]

---

१. लेख — "हिन्दी साहित्य का इतिहास," लेखक आ. सीताराम चतुर्वेदी, रजत जयन्ती ग्रन्थ, पृ. २५२ । राष्ट्रभाषा समिति, वर्धा ।

आचार्य चतुर्वेदीजी के इस कथन के अन्तर्गत संतवाणी पर सामान्यत: दो आक्षेप किये गये हैं-:१: दार्शनिकता । :२: पूर्व आलम्बन का अभाव । चतुर्वेदी जी के ये आक्षेप बिल्कुल निराधार हों, ऐसी बात नहीं । किन्तु इसके साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय साहित्य की यह एक मूलभूत विशेषता है कि उसे दर्शन से पूर्णतया विच्छिन्न नहीं किया जा सकता । यह बात अवश्य है कि साहित्य में दार्शनिकता एक समुचित एवं संतुलित अनुपात में रहे । जहाँ यह काव्य के ऊपर हावी हो जाती है वहाँ निश्चय ही कविता कविता न रह कर दार्शनिक तथ्यों की छन्दोबद्ध अभिव्यक्ति मात्र प्रतीत होती है । संत काव्य का कुछ अंश दार्शनिकता से बोझिल अवश्य है किन्तु समूची सन्तवाणी के सम्बन्ध में इस प्रकार का आक्षेप करना उचित प्रतीत नहीं होता । कबीर, रैदास, दादू, सुन्दरदास आदि सन्तों की वाणी का कुछ अंश निश्चय ही उत्कृष्ट काव्य की कोटि में रखा जाने योग्य है । इसे न केवल संत-साहित्य के प्रशंसकों ने अपितु सहृदय कवि एवं विवेचकों ने भी स्वीकार किया है । सन्तों का यह रागात्मक साहित्य जो सिद्धान्तपरक, नीति विषयक अथवा उपदेश-पूर्ण नहीं है, निश्चय ही साहित्य के अन्तर्गत स्थान पाने योग्य है ।

निर्गुण सन्तवाणी पर दूसरा आक्षेप यह किया जाता है कि उसमें मूलत: आलम्बन का अभाव है । महात्मा सूरदास ने भी "निरालम्ब मन चक्रित ध्यावै ..... तातैं सूर सगुण पद गावै" की ओर संकेत किया है । किन्तु सन्तों की वाणी निरी आलम्बन विहीन है यह भी कैसे कहा जा सकता है ? प्रेममार्गी सन्तों ने लौकिक आख्यानों को लेकर अपनी अभिव्यक्ति के लिए उचित आलम्बनों को जुटा लिया था और कथा के अन्तर्गत प्रतीकों एवं रूपकों के माध्यम से उन्होंने निर्गुण साधना का पथ प्रशस्त किया था । इन सन्तों को आचार्य चतुर्वेदीजी भी साहित्य की कोटि से बहिष्कृत नहीं कर पाये हैं ।[१] कबीर आदि ज्ञानमार्गी सन्तों तथा सगुण भक्तों की भाव योजना में अन्तर केवल इतना है कि एक अनुभूति साकार एवं ससीम है जबकि दूसरी निराकार एवं असीम । ब्रह्म : अमूर्त : को आलम्बन मानकर व्यक्त की गयी ऐसी अनुभूतियाँ भक्ति, अद्भुत एवं शान्त रसों

१. देखिए 'रजत जयंती ग्रन्थ, पृ. ३२७, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ।

की अवतारणा में काव्यात्मक सिद्ध हुई है । १: उनमें शृंगार है और वह भी समग्र रागात्मक वृत्तियों को झकझोर देने वाला, किन्तु वासना से पूर्णतः निर्लिप्त । १. कबीर, दादू, अखा आदि सन्तों की वाणी विद्यापति तथा जयदेव आदि से इसी जगह अलग हट जाती है । वस्तुतः साहित्य को यदि हम लोकमंगलकारी अनुभूति, कल्पना, अभिव्यंजना और चिन्तन का मन्दिर कहें तो इन सन्तों की वाणी निश्चय ही साहित्य के मन्दिर में अर्चना की सामग्री है ।

इस विवेचन का यह अभिप्राय कदापि नहीं समझा जाना चाहिए कि छोटे-बड़े सन्तों की समस्त उपलब्ध वाणी सत्साहित्य की कक्षा में स्थान पाने योग्य है । हमारा निवेदन केवल इतना ही है कि सन्त साहित्य की परीक्षा एक मात्र उपादेयता अथवा लोकहित की भावना के आधार पर ही न की जाकर ऐसे निकष पर की जानी चाहिए जिस पर उसके दोषों के साथ साथ उसके गुणों का भी मूल्यांकन हो सके । इस दृष्टि से हिन्दी में कबीर, दादू, सुन्दरदास तथा गुजरात में अखा, प्रीतम, वस्ता, मनोहर, छोटम, रवि साहब आदि सन्तों की वाणी के कुछ अंश अवश्य उत्कृष्ट साहित्य की कोटि में स्थान पाने योग्य सिद्ध होंगे ।

---

१. 'दुलहिन, गावहु मंगलाचार ।
मेरे घर आये हो राजा राम भरतार ।।' —कबीर ।
'अजहुं न निकसे प्राण कठोर,
चारि पहर चार हु जुग बीते,
रैन गंवाई भोर ।
दादू ऐसे आतुर विरहनि,
चितवत चन्द चकोर ।' —दादू ।
'साईं बिन दरद करेजे होय ।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया,
कासे कहूं दुःख होय ।।' —कबीर

२. "अकल कला खेलत नर ज्ञानी,
जैसेहि नाव हिरे फिरे दसों दिश,
ध्रुव तारे पर रहत निशानी ।।" — अखा ।
"साधो, यह तन ठाठ तंबुरे का,
ऐंचत तार मरोरत खूंटी, निकसत राग हजूरे का ।"
—कबीर ।

प्रस्तुत गवेषणा के द्वारा गुजरात के ऐसे अनेक हिन्दी-सेवी सन्तों तथा उनकी बानियों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है जिनकी गणना कबीर, नामदेव, सुन्दरदास जैसे उच्चकोटि के सन्तों तथा उनकी `बानी` के साथ की जा सकती है। हीरादास, समर्थदास, मांडण, अखा, प्राणनाथ, धीरा भोजा प्रीतम, माण साहब, रविसाहब, खीम साहब, मोरार, निरांत, मनोहरस्वामी, गवरीबाई, वस्ता विश्वम्भर, देवा साहब, कुबेर, क्रोटम तथा अनवर आदि सन्तों के नाम इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सभी सन्तों में अखा का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रखर है जिसकी वाणी ने अज्ञान की तिमिराच्छन्न घाटियों में ज्ञान का प्रकाश फैलाया और कर्मकांडों के चक्कर में भ्रमित सम्पूर्ण मानवजाति को अनुभव के आधार पर आत्मा को खोजने का सन्देश दिया अखा वस्तुत: गुजरात का कबीर है। वेदान्त की भूमिका पर अखा ने कबीर की भाँति अपने विचार जगत को जिस भाव प्रवणता के साथ लोकग्राह्य एवं लोकभोग्य बनाया, वह गुजरात के मध्ययुगीन प्राय: सभी कवियों को प्रभावित कर लेता है। १७ वीं शती का पूरा युगखंड अखा की इस ज्वलन्त भावधारा से परिपुष्ट है।

उत्तर के मध्यकालीन संतों की धार्मिक चेतना प्राय: हिन्दू-मुस्लिम दो भिन्न जातियों के संघर्षों में उद्भूत हुई और एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा में शमित भी हो गयी, किन्तु गुजरात में तो इन दो जातियों के साथ-साथ ईसाई, पारसी और यहूदी जातियों का भी सुभग संयोग हुआ जिनके सम्मिलन से न मात्र हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात ही कही गयी अपितु इससे भी ऊँचे उठ कर सर्वधर्म-समन्वय का उद्घोष सर्वप्रथम स्वामी प्राणनाथ ने किया। वस्तुत: स्वामी प्राणनाथ ने जिस पथ को प्रशस्त किया, आधुनिक युग में उसी पर चलकर स्वामी विवेकानंद और गाँधी जैसी विभूतियों ने `सर्वधर्म समन्वय` एवं `वसुधैव कुटुम्बकम्` का सन्देश समस्त विश्व को दिया था।

गुजरात के सूफी सन्तों की देन भी अपूर्व है। इन्होंने `युसुफ जुलेखा` और `खूब तरंग` जैसी मसनवियों की रचना कर निश्चय ही हिन्दी के श्रेष्ठ मसनवी साहित्य में अभिवृद्धि की है। `गूजरी` की परम्परा को जीवित रखने

में इन सन्तों की साधना अपना निजी महत्त्व रखती है । वस्तुत: दक्षिण की 'दक्खिनी' और गुजरात की 'गूजरी' में भाव तथा भाषा का अपूर्व साम्य भी इस बात का सूचक है कि खड़ी बोली हिन्दी के आन्दोलन की ये क्षेत्रीय कड़ियाँ जो अब तक अज्ञात रहीं, भारत व्यापी आन्दोलन की ही विशिष्ट एवं अभिन्न कड़ियाँ हैं । इन्हें जोड़ कर देखने से यह स्पष्ट हो जायगा कि भारत की सांस्कृतिक एवं धार्मिक एकता को कायम रखने में इन भाषा शृंखलाओं का योगदान कितना महत्त्वपूर्ण रहा है ।

सारांशत: गुजरात के हिन्दी-सेवी सन्तों की देन इस प्रकार है :-

१. भाषाकीय । २. साहित्यिक । ३. सांस्कृतिक ।

क १. भाषाकीय उपलब्धि :

प्रस्तुत अधिनिबन्ध में गुजरात से सम्पर्कित ऐसे पौने दोसौ सन्तों की हिन्दी वाणी का अनुशीलन किया गया है, जिन्होंने अपनी प्रादेशिक भाषा के साथ साथ हिन्दी के प्रति सहज ममता प्रदर्शित की है । प्रतिभा सम्पन्न सन्तों ने हिन्दी में उच्चकोटि के ग्रन्थों की रचना की है । १५ वीं शती से लेकर आजतक उनकी उनकी यह साधना निरन्तर गूढ होती गयी है । हिन्दी के प्रति इन सन्तों की साधना प्राय: दो प्रकार की है :-

१. प्रचारात्मक । २. सृजनात्मक ।

१. प्रचारात्मक साधना :

लोक कल्याण की व्यापक भावना से अभिभूत गुजरात के सन्तों ने हिन्दी को अपनी वाणी का माध्यम बनाया । भाषा के किसी व्याकरणिक स्वरूप की आवश्यकता इन्हें कभी अनुभूत नहीं हुई । अपनी वाणी के अन्तर्गत इन्होंने हिन्दी का वह स्वरूप अपनाया जो व्यवहार जगत की भाषा में प्रचलित था । हिन्दी भाषा के प्रयोग में प्रादेशिकता का पुट इनकी

निजी विशेषता है । भाषा की मूल प्रकृति ब्रजभाषा अथवा खड़ी बोली के अधिक निकट प्रतीत होती है, किन्तु उसमें गुजराती, राजस्थानी, मराठी, पंजाबी, सिन्धी और कच्छी प्रयोग भी मिलते हैं । जिस प्रकार कबीर की भाषा में केवल शब्द ही नहीं, अनेक भाषाओं के कारक-चिन्ह और क्रियापद मिलते हैं, उसी प्रकार गुजरात के सन्तों की भाषा भी वह पंचमेल खिचड़ी है, जिसमें लोकभाषा के आधार पर विविध प्रयोग किये गये हैं । इस प्रकार के विशिष्ट कारक एवं क्रिया-रूपों से समन्वित लोकभाषा के अनुरूप हिन्दी के विविध प्रयोग हिन्दी को उनकी अपूर्व देन हैं । गुजराती-हिन्दी, राजस्थानी-हिन्दी, मराठी-हिन्दी, सिन्धी-हिन्दी और कच्छी-हिन्दी विशिष्ट भाषाकीय उपलब्धियाँ हैं । इनमें वर्णों के आगम, लोप और विपर्यय पाये जाते हैं । भाषाविज्ञान की दृष्टि से जिनका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है । हिन्दी को राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए सन्तों की इस विविधरूपा भाषा के अन्तर्गत एकरूपता खोजी जा सकती है । हिन्दी के इस व्यापक आन्दोलन में गुजरात के सन्तों ने जो अलख जगाया वह मूक होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है । हिन्दी के प्रचार, प्रसार एवं विकास में इनकी मूक-साधना अपूर्व है ।

२. सृजनात्मक साधना :

गुजरात के सन्त कवियों की शताधिक हिन्दी कृतियों में से कुछ तो अवश्य ही संत साहित्य की अक्षय निधि सिद्ध होंगी । भाषा की दृष्टि से उच्चकोटि की रचनाओं में अखाकृत "संतप्रिया" और 'ब्रह्मलीला', रविसाहबकृत 'बोध-चिन्तामणि' और 'राम गुंजार चिन्तामणि' प्रीतमकृत 'ब्रह्मगीता' तथा 'साखीग्रन्थ' अनुभवानंद रचित 'विष्णुपद' वस्ताकृत 'साखीग्रन्थ', रंगीलदासकृत 'रंगिल सतसई', देवासाहब कृत 'कृष्णसागर, 'रामसागर' तथा 'हरिसागर', कृष्णदास रचित

'रघुवंशमणि', 'यदुनंदन' तथा 'ज्ञानगीता', नृसिंहाचार्यकृत 'नृसिंहवाणी विलास', समर्थरामकृत 'ध्रुवचरित' आदि प्रमुख कृतियाँ हैं ।

अर्वाचीन युग के गुजराती सन्तों ने गद्य-साहित्य भी लिखा है जिसका अधिकांश हिन्दी में उपलब्ध होता है । इस प्रकार के गद्य-रचनाकारों में केवलपुरी, नभू, सरयूदास, देवीदास : रामानंदी-साधू :, उपेन्द्राचार्य, दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी और धामी-सम्प्रदाय के अनेक सन्तों ने हिन्दी में गद्य रचनाएँ कर हिन्दी भाषा एवं गद्य-साहित्य की अनन्य सेवा की है । इस प्रकार की रचनाएँ सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार एवं सिद्धान्त निरूपण के हेतु रची गयी प्रतीत होती है । इस रूपमें इनका साहित्यिक मूल्य भले ही कम हो, किन्तु हिन्दी गद्य के उद्भव एवं विकास में इस प्रकार की रचनाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है ।

२. साहित्यिक उपलब्धि :

लोकमंगल-विधायक सन्तों का साहित्य वस्तुत: ऐसा सत्साहित्य है जिसमें मानव के युग-युग के संस्कारों की संचित निधि है । साधना एवं विश्वास के बल पर जिसमें जीवन के अमर सत्य खण्डों का संचय है और जिसमें युग के जर्जर प्राचीरों को ढहा कर मुक्त वातावरण में विहरने का नवोन्मेष है ।

दक्षिण एवं उत्तरभारत के सन्तों की भाँति गुजरात के सन्तों की वाणी में भी आत्म-प्रतीति की उत्कट-अभिलाषा एवं ब्रह्मज्ञान की अदम्य भूख है । ज्ञान की घटाओं में इनका मनमयूर उन्मत्त हो उठता है । ज्ञानी का रूप ही इनका रूप है । इस रूप में इनकी वाणी न तो किसी पण्डित की शास्त्र-सम्मत तर्करूपा वाणी है और न किसी कवि की कलात्मक अभिव्यक्ति, बल्कि इनकी वाणी

स्वानुभूतिमूलक "भुक्तभोगी आत्मा की ऐसी पुकार है, जिसमें शुष्क शास्त्र-ज्ञान की खिल्ली उड़ायी गयी है । गुजरात के सन्तों की यह एक निजी विशेषता है कि इन्होंने एकनिष्ठ और एकान्तिक भाव से न तो निर्गुण की ही साधना की है और न सगुण के प्रति विरोध ही प्रगट किया है । अत: इन्हें निर्गुण कहने की अपेक्षा ज्ञानमार्गी कहना अधिक श्रेयस्कर है । इनकी साहित्यिक देन इस प्रकार है —

:१: विषयगत एवं शैलीगत उपलब्धियाँ ।
:२: प्रतीक एवं रूपक योजना ।
:३: विशिष्ट-काव्य-प्रकार ।
:४: छन्द-वैशिष्ट्य ।
:५: संगीत तत्त्व ।

विषयगत एवं शैलीगत उपलब्धियाँ :—

गुजरात के ज्ञानमार्गी सन्तों का विषय न तो सगुण-निर्गुण का खण्डन-मण्डन ही था और न हिन्दू-मुस्लिम के अन्तरायों को पाटना ही, बल्कि ज्ञान के प्रकाश में उस 'आतम' को खोजने का प्रयास है जो सामाजिक रूढ़ियों एवं धार्मिक बन्धनों के बीच आबद्ध था । अखा, वस्ता, धीरा, प्रीतम, छोटम आदि सभी आध्यात्मिक उड़ान के कवि थे जिन्होंने आचार्य गौडपाद के अजातवाद, शंकर के मायावाद और सूफियों के रहस्यवाद को पूरी तरह से आत्मसात किया था । वेदान्त को पचाकर अखा ने जिस अजातवाद की भावमूलक व्याख्या की, वही उन्हें युग के बड़े से बड़े तत्त्व-चिन्तकों में प्रस्थापित कर देती है । गुजरात के ऐसे तत्वगवेषकों ने किसी अटपटी शैली का प्रयोग न कर परम्परागत प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों शैलियों में ब्रह्मविषयक चर्चा की है । सन्त-काव्य में इस प्रकार की कड़वाबद्ध प्रबन्ध शैली हिन्दी को उनकी महत्त्वपूर्ण देन है ।

, ब्रह्म, जीव और जगत की चर्चा के उपरान्त गुजरात के हिन्दी सेवी सन्तों ने पौराणिक कथाओं के आधार पर, विशेषत: भागवत् के आधार पर अनेक नवीन रचनाएँ की हैं। इसका कारण गुजरात की समृद्ध आख्यान-परम्परा का प्रभाव भी माना जा सकता है। गुजराती में इन सन्तों द्वारा रचित पौराणिक आख्यानों की एक लम्बी परम्परा भांडण से लेकर छोटम तक दिखायी देती है।

पौराणिक कथाओं के साथ साथ ये गुरु तथा सन्त महिमा का गान करते हुए भी नहीं अघाते। मुकुन्द गूगलीकृत 'कबीर चरित' और 'गोरख चरित' महात्यमराकृत 'भक्त महिमावली' प्रीतमदासकृत 'भक्त नामावली' आदि रचनाओं में मात्र गुजरात के सन्तों की यशगाथा ही नहीं अपितु उनमें दक्षिण, उत्तरभारत और बंगाल के सन्तों का का भी समावेश हुआ है। गुजरात के सन्तों द्वारा लिखी गयी ऐसी चरित गाथाओं में संकुचित क्षेत्रवाद अथवा सीमाबद्धता को कहीं भी स्वीकार नहीं किया गया। गुरु को इन्होंने बहुत ऊँचे स्तर से देखा है और इसलिए उसे जीवन्मुक्त, अवधूत, परमहंस, परमात्मा, सतगुरु आदि संज्ञाओं से अभिहित किया है।

प्रतीक एवं रूपक योजना :—

गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी वैराग्यजनित शुष्कवाणी न होकर जीवन की उल्लासपूर्ण अभिव्यक्ति है। ब्रह्म, जीव और जगत के निरूपण में इनकी वाणी सर्वत्र कल्पना, भावना, एवं औचित्य के सबलप्रवेग से संयोजित है। अपनी वाणी को स्पष्ट भावमूलक एवं लोक-भोग्य बनाने के लिए इन्होंने जिन प्रतीकों की संयोजना की है प्राय: दो प्रकार के हैं :—

:१: पारिभाषिक प्रतीक। :२: भावात्मक प्रतीक।

पारिभाषिक प्रतीक : इस प्रकार के प्रतीकों में कुछ ऐसे सांकेतिक, संख्यामूलक एवं रूपकात्मक प्रतीक हैं जो सन्तपरम्परानुमोदित हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें इस गुजराती सन्तों की विशिष्ट देन कह सकते हैं । उदाहरण के लिए सांकेतिक प्रतीकों में ऐन-गैन, अवलिंगी, योग मूलक प्रतीकों में मीनकला, मीनमार्ग, दर्दुर-मार्ग, गगन गुफा आदि ऐसे विशिष्ट प्रतीक हैं जिनका प्रयोग इन सन्तों के [illegible] ने अपने ढंग पर किया है । इस प्रकार के प्रतीकों के साथ-साथ इन्होंने कबीर की भाँति कुछ नवीन शब्द भी गढ़े हैं, जैसे 'सोहागन' के आधार पर 'दोहागन' ।

रूपकात्मक प्रतीकों में यद्यपि संधाभाषा का प्रयोग कम मिलता है, फिर भी सांग रूपकों की संयोजना में ये सन्त सिद्धहस्त हैं । 'ज्ञान-कटारी', 'ज्ञानघटा', 'भजन-भड़ाका', 'तन-तम्बूरा' और 'ज्ञान-हुक्का' कुछ ऐसे ही सांग रूपक हैं जिनमें इनकी कल्पना शक्ति एवं चमत्कार वृत्ति का पूरा परिचय मिलता है ।

भावात्मक प्रतीक : गुजरात की सन्तवाणी में भावात्मक प्रतीकों की योजना सबसे अधिक हुई है । ऐसे प्रतीकों को प्राप्त करने के लिए इन सन्तों को अन्यत्र भटकना नहीं पड़ा है अपितु लोक-जीवन से चुने गये ये सभी ऐसे घरेलू एवं सामान्य प्रतीक हैं जो सहज ही हृदय को स्पर्श कर लेते हैं । गुजरात के सन्तों द्वारा योजित ऐसे भावमूलक प्रतीक प्राय: तीन प्रकार के हैं :—

:१: रहस्यमूलक भावात्मक प्रतीक । :२: प्रकृतिमूलक भावात्मक प्रतीक । :३: लोक व्यवहारमूलक दाम्पत्य प्रतीक ।

विशिष्ट काव्य प्रकार :

साखी, पद और रमैनी सन्तों के प्रचलित काव्य-प्रकार रहे हैं। हिन्दी-सेवी गुजराती सन्तों ने अपनी रचनाओं में मध्ययुगीन गुजराती साहित्य के प्रचलित काव्यरूपों का प्रयोग किया है। ऐसे काव्य प्रकारों में बारमासी : बारहमासी :, गरबा-गरबी, कक्का, धोल, आरती, आख्यान अथवा चरित काव्य, कड़वा : कडवक : ऊथलो, जकड़ी, लावनी, गज़ल, मसनवी, होरी, गोष्ठी, गीता और छप्पा का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इन काव्यरूपों में से बारहमासी, ककहरा, गज़ल, मसनवी आदि सुविदित हैं जबकि गरबा-गरबी, धोल, ऊथलो, जकड़ी, लावनी आदिको इन सन्तों की विशिष्ट देन कहा जा सकता है।

छन्द वैशिष्ट्य :

गुजराती साहित्य में छन्द, देशी तथा राग-रागिनियों के विविध प्रयोग बारहवीं शती से लेकर आजतक अनवरत होते रहे हैं। नरसी पूर्व का समस्त गुजराती साहित्य देशियों की अपेक्षा छन्दबद्धता का विशेष आग्रही रहा है। इसके बाद शनै: शनै: देशियों का प्रचार बढ़ता गया है और छन्दों का प्रयोग मन्द होता गया है। छन्द वैविध्य के प्रति पुन: आकर्षण दयाराम के समय से प्रतीत होने लगता है। इस सम्बन्ध में खास बात यह है कि गुजरात का मध्ययुगिन साहित्य प्राय: ऐसे समय रचा गया जिस समय हिन्दी का रीतिकाल विकसित हो रहा था। दूसरे, कच्छ-भुज की पिंगल पाठशाला में उस समय कवियों को छन्द-शास्त्र का विशिष्ट ज्ञान दिया जाता था। गुजरात के सन्तों ने पिंगल की परिपाटी के आधार पर यद्यपि काव्य रचना नहीं की थी, फिरभी इनकी वाणी

में सहज भावेन दोहा, चौपाई, कुंडलिया, विष्णुपद, छप्पय, झूलणा, तोटक, कवित्त, सवैया, वसन्त तिलका, शिखरिणी, मनहर, इन्द्र विजय, पृथ्वी आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है ।

<u>संगीत तत्त्व :</u>

संगीत के क्षेत्र में गुजरात के सन्तों की यदि कोई सबसे बड़ी देन है तो वह है गुजरात के घरों में गूंजनेवाली लोकधुन की पकड़, जिसे इन्होंने देशी रागिनी के नाम से अभिहित किया है । इस रूप में सन्तों का साहित्य लोकगीत के अधिक निकट है और शास्त्रीय संगीत के बन्धनों से मुक्त विविध देशियों में रचा गया है । इस प्रकार की गेय देशियाँ संगीत की अमर निधि हैं जिन्हें गुजरात के सन्तों ने सहज ही लोक वीणा में उतार दिया है । निरांत, मनोहर, नमू एवं वस्तो आदि को तो संगीत का विशिष्ट ज्ञान भी था । गवरीबाई के पद मीरांबाई के पदों की तरह विभिन्न राग रागिनियों में संयोजित हैं । नाथभवान के विष्णुपद तथा अखा के धमार इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं । भैरव, केदार, विभास, बिलावल, कल्याण, मल्हार, मालकौंस, सारंग, आसावरी, कान्हरा, प्रभात, गोडी, सामेरी, मारू और विहाग के साथ-साथ सोरठ की राग बहुलता गुजरात की हिन्दी सन्त-वाणी की निजी विशेषता है । रागों में सोरठराग तथा तालों में हींच-ताल में निबद्ध गरबी-गरबा हिन्दी को उनकी महत्त्वपूर्ण देन हैं ।

<u>सांस्कृतिक देन :</u>

[illegible] सन्तों की सांस्कृतिक देन का मूल्यांकन करते हुए डॉ.अम्बाशंकर नागर ने उचित ही कहा है कि `भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है । इस समन्वय संस्थापन का बहुत कुछ श्रेय

मध्यकालीन सन्तों को है । इन सन्तों ने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचकर ज्ञान, भक्ति और प्रेम का अलख जगाया था और जाति तथा धर्म के भेदभाव को मिटा कर उन्होंने 'एकेश्वरवाद' और विराट मानव-धर्म की स्थापना की थी । ये लोग किसी एक प्रान्त के न होकर समस्त भारत के थे ।[१] इसी संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि भौगोलिक सीमाओं को इन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया । ये तो संस्कृति के जंगम तीर्थ थे, जिनका काम था विविधता में एकता का संस्थापन ।

गुजरात की समग्र सन्तवाणी इस प्रदेशकी सांस्कृतिक चेतना का ही परिणाम है । इसकी पृष्ठभूमि के निर्माण में शैवधर्म, शाक्तमत, जैनमत और वैष्णवधर्म का परोक्ष प्रभाव है । गुजरात में वैष्णवधर्म और जैनमत के अनुयायियों की संख्या प्राय: सबसे अधिक रही है । जैनमत की अहिंसा और सत्य की भावना तथा आस्थामयी वल्लभीय तल्लीनता व्यवसाय-प्रेमी गुजराती जनता के लिए कदाचित सबसे अधिक अनुकूल सिद्ध हुई, किन्तु १५ वीं शती के पश्चात् धर्म के नाम पर बढ़ते हुए अनाचारों का दमन कर सच्चाई की राह पर चलना सिखाया इन्हीं सन्तों ने । ये अपने युग के सबसे समर्थ सांस्कृतिक नेता थे । संस्कृति के क्षेत्र में इनकी उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं :—

:१: मानव धर्म की प्रतिष्ठा तथा ज्ञान का व्यापक प्रसार ।

:२: धर्म तथा ज्ञान की स्पष्ट एवं संतुलित चर्चा ।

:३: परंपरागत मान्यताओं के प्रति विद्रोह की भावना अथवा सामाजिक चेतना ।

:४: भौतिक जीवन में आध्यात्मिक क्रान्ति ।

:५: राष्ट्रीय जागरण ।

:६: असाम्प्रदायिकता ।

---

१. डॉ. अम्बाशंकर नागर 'गु. हि. ग.', पृ. २३ ।

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति की दृष्टि से गुजरात के सन्तों की देन का सम्यक विहंगावलोकन कर चुकने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गुजरात की सन्त परम्परा उत्तर-भारत की सन्त-परम्परा की ही एक कड़ी है तथा गुजराती सन्तों की हिन्दी वाणी के माध्यम से व्यक्त, ऐहिक एवं पारलौकिक सत्यों की अभिव्यक्ति अखिल भारतीय सन्त काव्य की अक्षय-निधि है । सारांशत: गुजरात के सन्तों की यह देन मात्र भाषा के क्षेत्र में ही महत्त्वपूर्ण नहीं, बल्कि विचारों में विशेष समझौतावादी, दर्शन में विशेष वेदान्तिक संस्कृति के क्षेत्र में व्यापक तथा साहित्य के क्षेत्र में नवीन काव्यरूपों, प्रतीकों एवं कल्पनाओं से परिपूर्ण है ।

0:0 0:0 0:0